स्कूल में मानवीय संवेदनाओं की पहल

मुकेश मालवीय

बच्चों में मौजूद संवेदनाओं को, भावनाओं को स्कूल कैसे पोषित कर सकता है यह लेख इसपर प्रकाश डालता है। लेखक अपने अनुभवों और अपने साथी शिक्षकों के अनुभवों को साझा करते हैं और बताते हैं कि कैसे एक शिक्षक एक कक्षा में सीखने-सिखाने का काम करते हुए बच्चों में परस्पर सम्मान, हमदर्दी और सहअस्तित्व जैसी भावनाओं को पोषित कर सकता है। सं.

हम सभी बड़ों के पास बचपन को देखने के या बच्चों के साथ समय लगाने के कम या ज़्यादा अनुभव हैं। बच्चे अपने आसपास के सजीवों के भावनात्मक संवेगों को पहचानकर वैसी ही भावनात्मक प्रतिक्रिया करते हैं। अपनी अभिव्यक्ति को भाषा के रूप में व्यक्त करना सीखने से पहले वे अपना सारा संवाद भावों के ज़रिए ही करते हैं। इस छोटी उम्र तक वयस्कों द्वारा उनके साथ किया जाने वाला संवाद शाब्दिक कम एवं भावात्मक ज़्यादा होता है। थोड़ा बड़े होने पर जब वे भाषा का इस्तेमाल करना सीखते हैं तब केवल शाब्दिक उच्चारण से किसी भाव की अभिव्यक्ति करना उनके लिए मुश्किल होता है इसलिए वे बड़ों से अपेक्षा करते हैं कि वे सीमित शब्दों के साथ की गई उनकी अभिव्यक्ति को समझ लें। वे अपने भावों के सम्प्रेषण के लिए शब्दों के अलावा कुछ लाड़-प्यार की ध्वनियों, चेहरे की भंगिमाओं एवं आवाज़ का उतार-चढ़ाव, अंगों के संचालन आदि की भी मदद लेते हैं। हालाँकि बड़ों के द्वारा उनसे किया जाने वाला संवाद धीरे-धीरे शाब्दिक अधिक होने लगता है (यह भी सम्भव है कि बड़ों के पास भी भावनाओं और संवेदनाओं के लिए शब्द कम हों)। आगे जब स्कूल लिखित भाषा का इस्तेमाल सिखाता है तो यह भाषा बच्चों को भाव एवं संवेदनाओं की ध्वनि सुनाने में बहुत ही कमज़ोर होती है। इस लिखित भाषा को अपनाकर भी बच्चे अपने भावों और विचारों को लिखित रूप में व्यक्त करने में असमर्थ होते हैं।

सहचर्य से भावनात्मक शब्दावली

आज से कुछ समय पहले तक (ग्रामीण परिवेश में अब भी) बच्चों का मिट्टी से परिचय होता ही था। गीली मिट्टी को हाथ में लेकर उससे कोई आकार जैसे– खिलौने या पुतले बनाना सभी को आ जाता था। सायकिल के पुराने टायर को लुढ़काने से लेकर सायकल चलाना सीखने तक के रोमांच से सभी बच्चे रूबरू होते। पेड़ पर चढ़ना बचपन की अनिवार्यता थी। घरघूला का खेल जिसमें बड़ों का अभिनय बहुत संजीदगी से किया जाता। बच्चों के ये खेल उन्हें निर्णय लेना, जोखिम उठाना, नेतृत्व करना, साथी के साथ चलना, साहस करना आदि कई सामाजिक गुण सहज ही बरतने के साथ ही एक भरी-पूरी भाषा का इस्तेमाल भी करना सीखाते थे। लोरी, संस्कार गीतों एवं लोक कथाओं से परिचय सहज था। यह बचपन बच्चों को सहज ही कलात्मक, रचनात्मक, कल्पनाशील और संवेदनशील बनाता था।

प्रायः स्कूल बच्चों के इस आपसी सहचर को पोषित नहीं करते। मिलकर सीखने, एक दूसरे से सीखने, टोली या समूह में कुछ करने के मौक़े स्कूल में कम ही उपलब्ध होते हैं, वरन आज स्कूल व्यक्तिगत प्रतिस्पर्धा को बढ़ाते हैं। प्रतिस्पर्धा संवेदनाओं को विकसित नहीं करती।



चित्र : हीरा धुर्वे

स्कूल जिस तरह समूह में सीखने की क्षमता को नज़रअन्दाज़ करते हैं वहीं व्यक्तिगत मौलिकता को भी कोई जगह नहीं देते। अधिकांश स्कूल मानते हैं कि बच्चे अनुकरण से सीखते हैं और इसी के चलते स्कूल सबको एक जैसा अनुकरण करने के लिए बाध्य करते हैं। जैसे– कब खड़े होना है, कैसे बैठना है, लड़के अलग बैठेंगे, लड़कियाँ अलग, घण्टी की आवाज़ से संचालित होना, जो बताया गया है वही बोलना है, जो लिखा गया है वही पढ़ना है, जो पढ़ा गया है वही लिखना है आदि। यहाँ सबको एक जैसा सीखने का इस क़दर दुराग्रह होता है कि कोई बच्चा अगर थोड़ा-सा भी हटकर कुछ कहने की या समझने की कोशिश करने के लिए रुके तो उसे पिछड़ा ठहराकर सब आगे बढ़ जाते हैं। सोचने-समझने और फिर अपनी तरह से आगे बढ़ने के मौक़े स्कूलों में कम ही होते हैं। स्कूल का वक़्त विषयों के शिक्षण में ही व्यतीत होता है और विषयों की विषयवस्तु इतनी शुद्धता के साथ लिखी जाती है कि वह बच्चों के साथ अर्थपूर्ण संवाद नहीं बनाती। कम ही शिक्षकों को वह हुनर आता है जिससे वे उस विषयवस्तु के साथ बच्चों का जुड़ाव, रोचकता, चुनौतियों, रोमांच का अनुभव या भावानुभूति करा सकें। शिक्षक बच्चों के साथ ऐसे कम ही अवसर निर्माण कर पाते हैं जहाँ बच्चों को अपनी कल्पनाओं और अपने विवेक का इस्तेमाल कर उस विषयवस्तु से जुड़ने का मौक़ा हो। बच्चे के मौलिक चिन्तन के लिए स्कूल में परिस्थिति और संवाद कम ही हैं।

कोमल भाव और संवेदना के अनुभव तथा इनके लिए अपनी भाषा में शब्दों से वंचित होकर बड़े होने में कमतरी रह जाती है। शिक्षा मर्मज्ञ बताते हैं कि संवेदना और भावनाओं की शब्दावलियों और अनुभवों को कला और साहित्य समृद्ध कर सकते है। यहाँ मैं अपने कुछ अनुभवों की बात करना चाहता हूँ। इन अनुभवों को दो भागों में बाँटकर देख सकते हैं। शायद ये कला और साहित्य के ही सरलीकृत तरीक़े थे जिसमें कला केवल प्रदर्शनकारी कला नहीं थी न ही साहित्य किसी पुस्तकालय में सिमटा था। इस लेख के पहले भाग में मेरे अपने शिक्षण के दौरान बच्चों के साथ किए जाने वाले क्रियाकलाप एवं गतिविधियाँ जो कि एक प्रायोगिक पाठ्यक्रम के हिस्से थे, और दूसरे भाग में शिक्षक साथियों के व मेरे द्वारा कक्षा में किए गए काम के अनुभव हैं। शिक्षक साथियों के ये अनुभव उन्होंने कभी किसी चर्चा में सुनाए थे जिन्हें बाद में मैंने भी अपनाया।

प्रायोगिक पाठ्यक्रम के मेरे अनुभव

1. कुछ-कुछ बनाना– गीली मिट्टी से, खपरैल को घिसकर, पत्तियों से, अन्य वस्तुओं से, पेंसिल या पेन से काग़ज़ पर कुछ बनाना और अपने बनाए हुए आकार या चित्र के बारे में बताना।
2. स्पर्श से पहचानना– वस्तुओं को, पत्तियों को और अपने-अपने साथियों को।

3. देखना– रोज़मर्रा की वस्तुओं को, पेड़ों को, स्थानों को देखना और उनकी बातें करना।

4. बिना देखे अपने साथियों की आवाज़ पहचानना, बिलकुल शान्त होकर आसपास की आवाज़ें सुनना और फिर उन आवाज़ों के बारे में बताना।

5. टोली में काम करना जिसमें सभी की भागीदारी बनाना, सामूहिक चर्चा में भाग लेना, दूसरों को सुनना और अपना मत व्यक्त करना।

6. कहानी, कविता, गीत, विवरण, विज्ञापन सुनना। नए विज्ञापन, कहानी, कविता बनाना, कहानी आगे बढ़ाना, अधूरी कहानी पूरी करना। कहानी कविता की किताबें पढ़ना।

इन सभी गतिविधियों में एक सहज सहचर्य होता है और इससे रचनात्मक वार्तालाप की परिस्थिति बनती है जिसमें बच्चों के मन में जो चल रहा है वे उसे अपनेपन के साथ ऐसे शब्दों में व्यक्त कर पाते हैं जो उनके अपने हैं। उनके अनुभव, भाव और तर्क को बताने के लिए उन्हें भाषा बाधा न बनकर एक सहूलियत या मददगार लगे, ऐसा उन्हें आत्मविश्वास मिलता है। इन परिस्थितियों में बच्चे अपने अनुभवों के लिए नई भाषा गढ़ना जानते हैं। जैसे– दो पत्तियों को छूकर उनमें अन्तर को बताने के लिए बच्चों ने अलग-अलग नाम दिए। एक ये नाम थे– कुर्री कुर्री और चिकट। इसी तरह एक सिक्के की गिरने की आवाज़ को एक बच्चे ने 'तिडिम तिडिम ठन्न' नाम दिया। अपने साथियों के परिप्रेक्ष्य को समझना और उनके अनुभव या भाव जो वह शब्दों के ज़रिए व्यक्त कर रहे हैं उन्हें समझकर और महसूस कर अपनी भावनात्मक प्रतिक्रिया देना भी इन गतिविधियों से सम्भव हुआ।

पाठ्यपुस्तकों की कहानियों पर शिक्षक साथियों के अनुभव

एक शिक्षक (सुशीलजी) ने मुझे अपनी कक्षा का अनुभव बताया। कक्षा में प्रेमचंद की कहानी 'ईदगाह' पर बात हो रही थी। कहानी 'ईदगाह' में रमज़ान के मेले में सब बच्चे अलग-अलग खिलौने ख़रीद रहे हैं पर हामिद के पास तीन ही पैसे हैं और वह इन पैसों से अपनी दादी अमीना के लिए चिमटा ख़रीदकर लौटता है। दादी रो रही है अपने हामिद को गोद में बैठाकर। इस कहानी में लिखा है, "उसका स्नेह ऐसा नहीं है जो प्रगल्भ हो और अपनी सारी कसक शब्दों में बिखेर दे, यह मूक स्नेह था ख़ूब ठोस रस और स्वाद से भरा हुआ"। यह मूक स्नेह है, यह भाव शब्दों से व्यक्त नहीं हो सकता। आगे प्रेमचंद लिखते हैं कि "बच्चे में कितना त्याग, कितना सद्‌भाव और कितना विवेक है"। इन शब्दों को हम इस उत्साह में जल्दी से पढ़ जाते हैं कि हामिद का चरित्र बहुत ऊँचा हो गया है। हम हामिद की इस छाया में इन शब्दों को देख रहे हैं, पर वास्तव में दादी हामिद के लिए जब ऐसा सोच रही है तो इसके मायने थोड़े अलग हैं। दादी जिसने अपनी पूरी कोशिश से हामिद का बचपन बचाए रखने की जद्‌दोजहद की, पर हामिद में त्याग, समझदारी और विवेक का आना उसका समय से पहले बड़ा हो जाना है। दादी अपनी इस विफलता पर रो रही है। यह रोना इसलिए निस्तब्ध है क्योंकि हामिद का चिमटा ख़रीदकर लाना दादी को हतप्रभ करता है।

माने वही शब्द जब एक संवेदनशील शिक्षक के पास आते हैं तो वह अपने बच्चों को भी वह अनुभूति और अनुभव करा पाता है जो उसके साथ हो रही है।

एक और कक्षा का उदाहरण है एक शिक्षक (दुर्गेशजी) जब पाँचवीं क्लास में नागार्जुन की कविता 'अकाल और उसके बाद' पढ़ा रहे थे। पंक्तियाँ थीं, "कई दिनों तक चूल्हा रोया चक्की रही उदास। कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उसके पास"। वे बताते हैं कि इन छोटे बच्चों को मैं अकाल बताने के लिए भूख को अनुभूत करा रहा था। किसी घर में कई दिनों तक चूल्हा नहीं जले या खाना नहीं बनता तो क्या कारण होते होंगे। वे बच्चों से इस कविता के आगे के दृश्यों

पर बात करते हुए भाव विभोरित हो अनायास ही रोने लगते हैं। उनके साथ पूरी क्लास रो रही है। कविता जीवन्त हो उठती है। अकाल को न सही, पर भूख और ग़रीबी से करुणा का अद्‌भुत भाव वहाँ पैदा हुआ। बच्चों ने इंसानों की ही नहीं, दूसरे प्राणी जिसमें कुत्ते, बिल्ली, छिपकली और कौआ सभी शामिल थे आदि की भूख का भी अहसास किया।

इसी तरह एक शिक्षिका (सरोज बहनजी)



चित्र : हीरा धुर्वे

आठवीं क्लास में रवीन्द्रनाथ टैगोर की कहानी 'याचक और दाता' बच्चों के साथ पढ़ रही हैं। पहले वे ख़ुद पूरी कहानी बच्चों को पूरी तन्मयता से पढ़कर सुनाती हैं। बच्चे कहानी सुनते हुए उस कहानी में रमे हुए हैं। अब वे बच्चों से कहानी पर बातचीत करती हैं। कहानी में कौन-कौन से पात्र हैं। बच्चे बताते हैं– एक बूढ़ी महिला है, एक बच्चा है, एक सेठजी हैं, एक मुनीम है। वे फिर बूढ़ी महिला के बारे में पूछती हैं– वह किस उम्र की है, क्या करती है आदि आदि। आपसी बातचीत से हरेक पात्र का एक पूरा चित्र बच्चों के मस्तिष्क में बन रहा है। इन पात्रों के निर्माण में वे कहानी के उन वाक्यों को पुनः पढ़ती हैं जिनसे उस पात्र की विशेषताएँ आती हैं जैसे– वह प्रतिदिन मन्दिर के दरवाज़े के पास जाकर खड़ी होती, दर्शन करने वाले को पुकारती, उसकी बोली की मिठास दर्शनार्थियों को आकर्षित करती और लोग नेत्रहीन वृद्धा से महकते फूल लेते, उसकी झोली में पैसे डालते और आगे बढ़ जाते। बच्चे बताते– वह बुज़ुर्ग थी, नेत्रहीन थी, मीठा और प्यार से बोलती थी, फूल बेचती थी पर फूल के कोई निश्चित पैसे नहीं माँगती थी। वे कहानी की घटनाओं पर बात करती हैं।

वे कुछ ऐसे वाक्यों पर रुकतीं और बच्चों से समझतीं कि इन लाइनों का मतलब क्या है जैसे– 'ममता का आँचल पाकर बच्चा सब कुछ भूल गया था।' 'वह बच्चे का सुखद भविष्य बुन रही थी।' 'मन्दिर का पुजारी उसकी ममता पर गर्व महसूस करता था।'

बहनजी कुछ वाक्यों पर रुकतीं और पूछतीं कि ऐसा क्यों लिखा है जैसे– 'सेठ बनारसी दास की देवभक्त और धर्मात्मा के रूप में पहचान थी।' वे पूछतीं– यह 'पहचान थी' क्यों लिखा है, सेठजी 'देवभक्त और धर्मात्मा थे' क्यों नहीं लिखा। या मुनीमजी ने सेठजी की ओर रहस्यमयी दृष्टि से देखने के बाद कहा, 'तेरे नाम तो कुछ भी जमा नहीं है।' यहाँ रहस्यमयी दृष्टि का क्या मतलब है आदि। वे इस पाठ के भावनात्मक हिस्सों को बच्चों तक पहुँचाने में कामयाब रही हैं।

एक शिक्षक पत्र लेखन का काम करवा रहे हैं जिसमें किसी देखे हुए स्थान का वर्णन करना है। बच्चे इस तरह के वाक्य लिख रहे हैं– 'मैंने नर्मदा का सेठानी घाट देखा। यह बहुत सुन्दर है, यहाँ बहुत-से मन्दिर हैं। यहाँ बहुत-से लोग आते हैं।' शिक्षक बच्चे से बात करते हैं कि 'बहुत सुन्दर' का क्या मतलब निकालें। कोई मन्दिर दूसरे मन्दिर से कैसे अलग है। वे कहते हैं– क्या ख़ास है उस जगह में। उसको बताने के लिए हमें उस स्थान को ध्यान से ठहरकर

देखना होगा। घाट पर आने वाले लोग किस तरह के हैं। किसी एक व्यक्ति को देखना कि वह घाट पर आकर क्या करता है, कितनी देर वहाँ रहता है। नदी को देखना, कैसी दिखती है नदी, क्या नदी की कोई आवाज़ है।

फिर शिक्षक को सूझता है कि आज हम सब एक-एक पेड़ को देखेंगे। और अपने-अपने पेड़ के बारे में बताएँगे। आप अपने पेड़ के बारे में इतना ज़्यादा देखें कि उस पेड़ के बारे हमें सब कुछ बता पाएँ। हम आपके पेड़ को देखने के लिए उत्सुक हो जाएँ और शायद हम बता दें कि तुम कौन-से पेड़ की बात कर रहे हो। बच्चों ने अपने पेड़ पर चलने वाली चींटी से लेकर उसपर बैठे पक्षी और पत्ते की बनावट आदि की तरफ़ अपना ध्यान लगाया।

अगर बच्चों को थोड़ी स्वतंत्रता है और उन्हें पढ़कर ख़ुद अर्थ बनाने के मौक़े दिए जाएँ तो फिर जो लिखा है उसपर सवाल भी उठने लगते हैं। डॉ परशुराम शुक्ल की कहानी 'वसीयतनामे का रहस्य' पढ़ते हुए मेरी कक्षा के बच्चों ने कई सवाल उठाए। इस कहानी में एक वाक्य है– "वृद्ध किसान के चार बेटे व एक अत्यन्त रूपवती कन्या थी"। नंदनी ने पूछा कि लेखक ने लड़कों को रूपवान क्यों नहीं लिखा या चार बेटे और एक कन्या थी, ऐसा लिख सकते थे। मैंने कहा– हाँ, ऐसा लिखा जाना चाहिए। पर हो सकता है यह कहना आगे शायद कहानी की ज़रूरत हो इस शब्द की। कहानी आगे बढ़ जाती है। किसान, जो कि बहुत बुद्धिमान, दूरदर्शी व न्यायप्रिय था, अपनी जायदाद तीन हिस्सों में बाँटने की वसीयत करके मर जाता है। आगे कहानी में चारों भाई अपनी बहन के साथ वसीयत का झगड़ा निपटाने एक महाराजा के महल में पहुँचते हैं। महाराजा की दृष्टि उस युवती पर पड़ी जो चारों भाइयों के साथ आई थी। महाराजा को युवती बड़ी अच्छी लगी। यह लाइन भी लड़कियों को खटकी। आगे महाराजा ने वसीयत का फ़ैसला किया। एक भाई को जेल में डाला गया (क्योंकि वह महाराजा के बताए हुए प्रलोभन में आ जाता है) बाक़ी तीन भाइयों में सम्पत्ति बाँट दी गई। और उस कन्या से महाराजा ने विवाह रचा लिया। इस कहानी पर ख़ूब बातचीत हुई। जिस महाराज को लेखक एक न्यायकर्ता के रूप में पेश कर रहे थे बच्चों ने उसे एक लम्पट व्यक्ति की तरह समझा। उन भाइयों की बहन से महाराजा का शादी कर लेना बहुत-से बच्चों को ठीक नहीं लगा। लड़की को वह महाराज पसन्द है, वह उससे शादी करना चाहती है या नहीं, यह उस लड़की से पूछा जाना चाहिए था। भाइयों को प्रलोभन देकर दूसरे को मारने के लिए कहना बच्चों को पसन्द नहीं आया। इस तरह ख़ूब सारी बातचीत हुई। इस कहानी के लेखक ने कभी अपनी कहानी की इस तरह की आलोचना शायद नहीं सुनी होगी।

अन्त में

मैं यह कहना चाहता हूँ कि स्कूल ही शायद वो जगह बन सकते हैं जहाँ बच्चों की भावनाओं और संवेदनाओं को, जो कि मुझे लगता है बच्चे में जन्मजात होती हैं, पोषित किया जा सकता है। ये संवेदनाएँ, भावनाएँ बच्चे के पास भाषा का इस्तेमाल सीखने के बाद भी बची रहें और वह इनकी यथेष्ठ अभिव्यक्ति शब्दों के ज़रिए भी कर पाए। स्कूल और कक्षा ऐसी जगह बन सकते हैं और बननी चाहिए जो बच्चों को ऐसे तैयार करें कि वे ऐसे शब्दों को सुनकर उन भावों को महसूस कर पाएँ जो परस्पर सम्मान, हमदर्दी और सहअस्तित्व की पहचान से उभरते हैं और व्यक्तिगत स्पर्धा और ख़ुद की श्रेष्ठता की चाहत से कमज़ोर होते हैं।

मुकेश मालवीय पिछले दो दशक से भी ज़्यादा समय से स्रोत शिक्षक के रूप में सरकारी और ग़ैर-सरकारी भूमिकाओं में सक्रिय हैं। कक्षा अनुभवों को लेकर सतत लिखते रहते हैं। वर्तमान में अनुसूचित जाति विकास विभाग के शासकीय आवासीय ज्ञानोदय विद्यालय, होशंगाबाद (मध्यप्रदेश) में शिक्षक पद पर कार्यरत हैं।
सम्पर्क : mukeshmalviya15@gmail.com